संसार सागर से उद्धरण

ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं
द्वारकाशारदापीठाधीश्वर
जगद्गुरु शङ्कराचार्य भगवत्पाद
श्री स्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज - द्वारका

प्रकाशक
शारदापीठ प्रकाशन
द्वारका - जामनगर (गुजरात)

संसार सागर से उद्धरण

ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं

द्वारकाशारदापीठाधीश्वर

जगद्गुरु शङ्कराचार्य भगवत्पाद

श्री स्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज - द्वारका

प्रकाशक

शारदापीठ प्रकाशन

द्वारका - जामनगर (गुजरात)

पुरोवाक्

वेदशास्त्रानुमोदित पद्धति से जीवन यापन कर चारों पुरुषार्थों की सिद्धि ही मानव जीवन का लक्ष्य है। सनातन धर्म इसलिए सनातन है कि हम सृष्टि के प्रारम्भ से ही इन्हीं मूल्यों को आधार बनाकर संसारयात्रा का अनुवर्तन करते रहे हैं। हमारे भारतीय वाङ्मय में भगवान् की वाणी को जन-जन तक पहुँचाकर उस पर चलने की सत्प्रेरणा देने की भूमिका परमवीतराग तपःपूत मनीषियों को सौंपी गई है। जब-जब मानवता इन पथों से विमुख होती है तो हमारा सनातन धर्म उस अवतार की कल्पना को मनीषी के अवतरण के रूप में साकार करता है। भगवान् श्रीमदादि शङ्कराचार्य इस कड़ी के अनन्यतम स्तम्भ रहे हैं, इन्होंने भ्रान्त मानवता को पाखंड एवं कुरीतियों से मुक्त उदात्त सनातनी पथ पर चलने का जो मार्ग दिखलाया था, आज वही मार्ग सबके कल्याण का सहज पाथेय है। उन्हीं की परम्परा में अनन्तश्रीविभूषित प्रातः स्मरणीय अहर्निश वन्दनीय पदवाक्य-प्रमाणपारावारपारीण ज्योतिष् एवं द्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगदगुरु शङ्कराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज हैं जिन्हें हम सनातन धर्म का महान् सम्पादक कह सकते हैं। जिन्होंने एक कुशल सम्पादक की तरह सनातन धर्म को आद्य शङ्कराचार्य की भाँति अवांछित उपक्रमों से मुक्त कर सही एवं सरल विषय वस्तु को हमारे अनुगमन के लिए प्रस्तुत किया, जो सनातन धर्म का सार है, मानव कल्याण का अप्रतिम स्त्रोत है तथा इसका अनुगमन करने से लौकिक व पारलौकिक सिद्धियाँ बिना किसी कठिन प्रयास के ही प्राप्त हो सकती हैं।

आज व्यक्ति के व्यस्ततम जीवन तथा पूज्य श्रीचरणों के मानव-कल्याण तथा धर्म प्रचार हेतु निरन्तर विचरण के कारण यह सम्भव नहीं कि हम उनका नित्य सान्निध्य प्राप्त कर उपदेश -ग्रहण करते रहें, इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए पूज्य महाराजश्री के प्रवचनों का सार भक्तों ने सङ्कलन कर उसका कुछ भाग हमें दिया, जिसे संसार सागर समुद्धरण के

नाम से "शारदापीठ प्रकाशन" प्रकाशित कर रहा है। इस लघु पुस्तिका में - अध्यात्म विद्यामंदिर तत्त्व तीर्थ, अहमदाबाद में सन् १९९४ में पूज्य महाराजश्री द्वारा प्रदत्त श्रीमद् भागवद् परमोपदेश भी शामिल है।

जिस प्रकार वेद की ऋचाओं के पाठ से भगवान् को प्रसन्नता होती है क्योंकि ऋचाएँ भगवान् की वाणी हैं, उसी प्रकार इन जीवन सन्देशों के अनुसार जीवन यापन करने से पूज्य श्रीचरणों को अत्यन्त आत्मतोष होगा क्योंकि उनके निर्दिष्ट पथपर चलने से सकल पुरुषार्थसिद्धि एवं लोक कल्याण का मार्ग प्रशस्त होगा, जो पूज्य श्रीचरणों के जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य रहा है।

हम समस्त सनातन धर्मी जनता की ओर से सकलकल्याणप्रद इन सन्देशों को प्रसारित करने में और उन्हें पुस्तिका के रूप में प्रकाशित करने की सहज अनुमति देने के लिए पूज्य श्रीचरणों में सादर कृतज्ञता अर्पित करते हैं। और भगवान् चन्द्रमौलीश्वर, ज्योतिरीश्वर, माता शारदाम्बा एवं पूर्णाम्बा से प्रार्थना करते हैं कि पूज्य श्रीचरणों की कृपा दृष्टि हम सब पर सनातन रूप से बनी रहे।

मकर संक्रान्ति २०६१ — **स्वामी सदानन्द सरस्वती**

१४-०१-२००५ — **श्री शारदापीठम् द्वारका**

आशीर्वचांसि

जीव स्वभाव से ही नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त है। संसार उसके स्वरूप में आरोपित है। आरोपित संसार के ही कारण वह भ्रमवश अपने स्वरूप में सुखित्व-दुःखित्व का अनुभव करता है। सुखित्व-दुःखित्व ही संसारित्व है और अहंता-ममता संसार है। वस्तुतः जीव सदा परमानंदस्वरूप है। गोस्वामी तुलसीदासजी के कथनानुसार आनंदसिंधु में भवसिंधु की कल्पना हो रही है। संत कबीर ने भी कहा है, पानी में मीन पियासी मोहे देखत आवे हाँसी रे। आनंदसिंधु का साक्षात्कार होते ही भवसिंधु सूख जाता है। आनंदसिंधु हमारा स्वरूप ही है। अपनी विस्मृति के कारण ही हम-भटक रहे हैं।

आत्मज्ञान कोई नवीन आगंतुक ज्ञान नहीं है। वस्तुतः स्वरूप में आरोपित अज्ञान का त्रैकालिक निरसन ही आत्मसाक्षात्कार है। आत्मसाक्षात्कार वही है जिसमें ज्ञान के पूर्व और पर का अंतर न हो। साक्षात्कृतात्मा के अनुभव का स्वरूप यही है कि मैं नित्य मुक्त हूँ। मुक्ति आगंतुक नहीं है और न ही कोई अवस्था है। ज्ञातृत्व से उपलक्षित आत्मा ही अज्ञान की निवृत्ति है जो स्वरूप से अनतिरिक्त है। अहमस्मि - इस रूप से सबको आत्मा का स्वाभाविक ज्ञान है। इसलिये आत्मा के ज्ञान के लिये पृथक् प्रयत्न की आवश्यकता नहीं है। वेदों के महावाक्यों से जो ब्रह्माकारवृत्ति निर्मित होती है उससे जीव और ब्रह्म की एकता का बोध होता है। महावाक्य की उपयोगिता ब्रह्म की परोक्षता और जीव की परिच्छिन्नता का निराकरण करने में ही मानी जाती है। महावाक्य के द्वारा आत्मा की अपरिच्छिन्नता और आनंदरूपता का निश्चय ही आत्मसाक्षात्कार कहलाता है। इससे भवसमुद्र, जिसकी भयानकता का प्रस्तुत प्रवचन में वर्णन किया गया है, सर्वथा सूख जाता है। "नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं। करह विचारु सुजन मन माहीं॥" यहाँ नाम का अर्थ महावाक्य ही है।

सत्संग इस प्रकार के निश्चय में सहायक है। सत्संग के तीन प्रकार है :

१. सत्स्वरूप आत्मा में दृढ निष्ठा रखना।

२. जो तत्त्वदर्शी ज्ञानी महात्मा है, उनका संग करना।

३. जिस आत्मसाक्षात्कार के लिये साधन-चतुष्टय-संपन्न होकर, हम प्रयत्नशील हो रहे हैं, उसका परस्पर चिन्तन, कथन, चर्चा और प्रबोधन। जिसका दूसरा नाम ब्रह्माभ्यास भी है।

इस प्रकार के सत्संग से साधक को परम शांति और अनिर्वचनीय आनंद का अनुभव होता है।

नर सहस्त्र महँ सुनहु पुरारी । कोउ एक होइ धर्म व्रतधारी ॥
धर्मसील कोटिक महँ कोई । विषय विमुख विराग रत होई ॥
कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई । सम्यक् ग्यान सकृत कोउ लहई ॥

जिन के जन्मजन्मांतर, युगयुगांतर, कल्पकल्पांतर के पूर्व पुण्यों का उदय होता है, उन्हीं की इस मार्ग में प्रवृत्ति होती है।

- शुभाशिषः सन्तु
स्वरुपानन्द सरस्वती

संसार सागर से उद्धरण

सत्संग की महिमा

जीवन के उन क्षणों को अत्यंत दुर्लभ माना जाता है, जिन में सत्संग होता है।

धन्य घरी सोइ जब सतसंगा ॥

राम. उत्तरकांड

गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है कि वह घड़ी धन्य है जब प्राणी सत्संग में रहता है। सत्पुरुषों का दर्शन भी भगवान् की अपार करुणा के फलस्वरूप ही होता है।

जब द्रवइ दीनदयालु राघव साधुसंगति पाईये।

विनयपत्रिका

जब जीव पर दीनदयालु राघव द्रवित होते हैं, तब उसको साधुसंगति मिलती है। क्षणमात्र की भी सज्जनसंगति कल्याण करती है।

भगवान् आद्य शंकराचार्यजी ने कहा है :

क्षणमपि सज्जनसंगतिरेका भवति भवार्णवतरणे नौका।

क्षणमात्र की भी सज्जन-संगति संसार - समुद्र से पार करानेवाली नाव बन जाती है।

भजगोविंदस्तोत्र १३

संसार - समुद्र

हमारे आध्यात्मिक ग्रंथों में संसार को समुद्र से उपमित किया गया है। संसार-सागर, भवार्णव, भवजलनिधि - यह सब संसार के संबंध में कहा गया है। संसार एक समुद्र है। हम, आप, सब संसारसमुद्र में है। किन्तु सहसा हमें यह समझ में नहीं आता कि हम समुद्र में कैसे हैं, जब कि अच्छी तरह बैठे

हैं। कोई यहाँ पर पास में जल नहीं है। पर विचार किया जाय तो हम समुद्र में ही हैं। जैसे समुद्र में जल होता है, उसी प्रकार संसार-समुद्र में भी जल हैं, और वह दुःख का ही जल है। और जैसे समुद्र में पर्वताकार बड़ी तरंगें होती हैं, उसी प्रकार संसारसमुद्र में भी छः बड़ी बड़ी तरंगें है। दो शरीर की, दो प्राण की और दो मन की।

शरीर की दो तरंगें हैं, जरा और मरण, बुढ़ापा और मृत्यु। इनकी लपेट में सबको आना पड़ता है। वृद्धावस्था कोई नहीं चाहेगा और मृत्यु भी कोई नहीं चाहेगा। परन्तु न चाहने पर भी वृद्धावस्था आ जाती है।

देखत ही आयी बिरुधाई। जो तैं सपनेहुँ नाहि बुलाई।

विनयपत्रिका

देखते ही देखते वृद्धावस्था आ जाती है, जिसको जीवन में सपने में भी नहीं बुलाया। एकाध बाल पक जाता है, तो मनुष्य उसे यह सोचकर नोंच देता है कि ठीक है, एक पक गया तो पक गया, बाकी तो अभी काले हैं और कुछ लोग तो कुछ लगा देते हैं, बुढ़ापे को छिपाने के लिये। लेकिन कहाँ तक छिपाओगे ?

वृद्धावस्था आती है। बड़ा करुण स्वरूप बनता है। भगवान शंकराचार्यजी ने चित्रण किया है :

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम्॥

भजगोविंदस्तोत्र १५

अंग गलित हो गये, केश पलित हो गये, माने श्वेत हो गये, मुख में एक भी दांत नहीं बचा। दशनविहीनं जातं तुण्डम्। और शरीर वृद्ध हो गया, दो पैर के तीन पैर हो गये। दो तो थे ही, लाठी और आ गयी। तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम्। आशा फिर भी पिण्ड नहीं छोड़ती और परिवार की दशा क्या है ?

यावद्वित्तोपार्जनशक्तः तावन्निजपरिवारो रक्तः।
पश्चाज्जर्जरभूते देहे वार्तां कोऽपि न पृच्छति गेहे॥

भजगोविंदस्तोत्र ५

मनुष्य जब तक धनोपार्जन करने में समर्थ होता है तब तक परिवार के लोग प्यार करते हैं। जब शरीर जर्जरीभूत हो जाता है तब घर में कोई सीधी बात भी नहीं करता है। ऐसा बुढ़ापा कोई नहीं चाहेगा परन्तु वह आ जाता है। जवानी में और बुढ़ापे में यह अंतर है कि जवानी जाकर नहीं आती, और बुढ़ापा आकर नहीं जाती।

इसी प्रकार मृत्यु है। मृत्यु को भी कोई नहीं चाहेगा। लोग नहीं चाहते कि हमें मरना पड़े। कभी कभी कुछ लोग कहते हैं कि मर जाते तो अच्छा था। बहुत कष्ट है। लेकिन वे ऊपर से कहते हैं, भीतर से नहीं। कोई एक बुढ़िया थी। बहुत गरीब थी। जंगल से लकड़ी लाकर बेचकर अपना जीवनयापन करती थी। एक बार वह जंगल में गयी। लकड़ियों को इकट्ठा करके उसने बोझ बनाया। उठाने लगी। बोझ नहीं सम्भला। तो बोझ भी गिरा और वह भी गिर पड़ी। चोट लगी। तो बोल उठी; क्या करूँ, मौत भी नहीं आती। इतने में मौत अपना विकराल रूप लिए सामने आ गयी और बुढ़िया से पूछा कि क्यों बुलाया। तो, मौत के भयानक रूप को देखकर बुढ़िया बोली कि यह बोझ उठा दे इसीलिये बुलाया है।

जरा-मरण इसकी कोई इलाज नहीं । विज्ञान ने इतनी तरक्की कर ली। लोग चाँद पर जाने लगे और भी कितने प्रकार के आविष्कार हो गये। लेकिन बुढ़ापे का कोई इलाज नहीं मिला । वृद्धावस्था अभी भी आती है और मृत्यु से कोई भी वैज्ञानिक मुक्त नहीं करा सका। वैज्ञानिक स्वयं भी मृत्यु से मुक्त नहीं हो पाया। जरा-मरण से छुटकारा कोई नहीं दिला सकता। ये दो तरंगें सबको अपनी लपेट में लेती हैं। समुद्र में आप जाइये। द्वारका के समुद्र में चले जाइये। उत्ताल तरंगें आतीं हैं। सीधे खड़ा नहीं रह सकता कोई। जब सिर झूका दे तब तो थपेड़ों से बच जाता है। मगर सीना तानकर खड़ा रहे तो गिर पड़ता है। रेत में रगड़ जाता है।

यह संसार की तरंगों का रूप है, शरीर की ।
और दो प्राण की हैं। एक भूख और दूसरी प्यास।

भूख लगना और प्यास लगना, यह सबके पीछे है। और यह भूख ऐसी

है कि यही मनुष्य को सोते से जगाती है। चाहे कितने भी आप थके हो; आपको जागना पड़ता है, कि आपको जाना है। ट्रेन पकड़नी है, बस पकड़नी है, कृषि करनी है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की नौकरी करता है। क्यों ? भूख लगती है। हम लोग भी, सारी दुनिया छोड़कर बैठें हैं। कहते हैं, ये महात्मा लोग जो हैं, साढ़ें तेईस घंटों के बादशाह है। साढ़े तेईस घंटे कुछ नहीं चाहिये। परंतु आधा घंटा जब भूख लगती है, तब फिर महात्मा को भी झोली उठानी पड़ती है। चलो गृहस्थ के यहाँ। नारायण ! भगवान् शंकराचार्यजी ने भी अनुमति दे दी :

क्षुद्व्याधिश्च चिकित्स्यतामनुदिनं भिक्षौषधं भुज्यताम्।
भिक्षारूपी औषधि से क्षुधारूपी व्याधि को दूर कर देना॥

साधनपंचक ४

बड़ी भयंकर होती है भूख। महाभारत के प्रसंग में आता है; जब गांधारी के सौ पुत्र मर गये, बहुत दुःख हुआ उसको। अपने पुत्रों के शवों के बीच में बैठकर विलाप करने लगी। खानापीना छोड़ दिया। लोगों ने अनुरोध किया कि गांधारी, उठो, उबटन करो। स्नान करो। गान्धारी बोली नहीं, बस यहीं जीवन का अंत होगा। मेरे बेटे मर गये। अब मेरे जीवन में कुछ नहीं बचा। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी समझाया। नहीं मानी। भगवान् तो समझा कर चले गये। थोड़ी देर में गांधारी को भूख लगी। इतने जोरों से भूख लगी कि आँख की पट्टी खोलकर इधर-उधर देखने लगी, कुछ हो तो में खाऊँ। पास में एक बेर का पेड़ लगा था। उसमें फल पके हुए थे। गयी और बेर के फल तोड़ने लगी। हाथ नहीं पहुँचा। अपने बेटों की लाशों के ऊपर चढ़कर तोड़ने लगी। इतने में भगवान् श्रीकृष्ण आये। पूछा, गांधारी, क्या कर रही हो ? तो लज्जित हो कर बोली :

वासुदेव जरा कष्टं कष्टं निर्धनजीवितम्।
पुत्रशोकं जरा कष्टं कष्टात्कष्टतरं क्षुधा॥

हे वासुदेव ! संसार में बुढ़ापा बहुत बड़ा कष्ट है और निर्धन जीवन भी बड़ा कष्ट है। पितामाता के सामने पुत्र जाय यह और भी बडा कष्ट है। पर आज मेरी समझ में आया। कष्टात्कष्टतरं क्षुधा। भूख से बढ़कर और कोई कष्ट नहीं है।

भूख लगती है। सबको लगती है। भूख और प्यास की थपेड़ों से सब परेशान हैं।

ये दो प्राण की तरंगें हैं

और दो मन की तरंगें हैं, शोक और मोह।

प्रिय जनों का वियोग सबको होता है। कोई ऐसा नहीं है जिसको प्रिय जनों के वियोग का दु:ख न हुआ हो। जिस माता ने प्यार से पाला; स्वयं गीले में सोकर हमें सूखे में सुलाया; और पिता मारने दौड़े तो सामने खड़ी हो गयी, मुझे मार दो, मेरे बेटे को मत मारो – वह मेरी वात्सल्यमयी माँ मेरे सामने जाती है। इस संसार की नियति ऐसी है।

जो पिता नौकरी करके, व्यवसाय करके कष्ट सहता है, सहन करता है, अपने पुत्रों को पालता है, बेटियों को पालता है, दुलार करता है, बेटे-बेटियों को अपने सारे जीवन की कमाई दे देता है, वह छोड़ के चला जाता है। पति के सामने पत्नी, पत्नी के सामने पति, सहोदर भाई की आँखों के सामने सहोदर भाई चला जाता है। जिसके बिना मनुष्य चाय भी नहीं पीता, मित्र के साथ साथ चाय पीता है, वह मित्र छोड़कर चला जाता है।

यह प्रिय जनों के वियोग का दु:ख किसको नहीं होता ? यह थपेड़ा किसको नहीं लगा है ? और किसी भी तरह से, मोह-ममता के कारण हमें जो कष्ट होता है, अपने प्रिय जनों से, सबको होता है।

संसार सागर से उद्धरण

तो ऐसे भयंकर संसार में, जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर ये बड़े बड़े मगरमच्छ हैं, उसमें विषय और इन्द्रियों के संपर्क से प्राप्त होनेवाला जो क्षणिक सुख है, वह घास और लकड़ी के समान है। थोड़ा सा सहारा है। डूबते को तिनके का सहारा है। ऐसे घोर जलधि में, संसारसमुद्र में प्राणी पड़ा हुआ है। इसीलिए गुरुके पास जाना पड़ता है।

अपारसंसारसमुद्रमध्ये सम्मज्जतो मे शरणं किमस्ति।

गुरो कृपालो कृपया वदैतद् विश्वेशपादाम्बुजदीर्घनौका।

अपार संसार सागर में मैं डूब रहा हूँ। मेरा आश्रय क्या है, हे कृपालु गुरु बताइये । गुरु बताते हैं - विश्वेशपादाम्बुजदीर्घनौका । भगवान् विश्वनाथ के चरणकमलों के जहाज में बैठो। वे तुम्हें पार लगायेंगे। वे ही विश्वनाथ हैं, वेंही विष्णु हैं, वे ही कृष्ण हैं, वे संसार सागर से पार करेंगे।

कैसे करेंगे ? भगवान् श्रीकष्ण कहते हैं, श्रीमद्भगवद्गीता में, जो मेरा सतत भजन करते हैं, मेरा ही कीर्तन करते हैं, मेरे ही तत्त्व का परस्पर वर्णन करते हैं, ऐसे सतत प्रीतिपूर्वक भजन करनेवालों के लिए।

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥

अपने भक्तों के ऊपर अनुकंपा, अनुग्रह करने के लिये मैं उनके अंत:करण में आत्मभावस्थ हो जाता हूँ, और अज्ञान से उत्पन्न होनेवाले अंधकार को समाप्त कर देता हूँ।

भ. गी. १०-११

अज्ञान का नाश

अज्ञान का नाश कैसे होता है ? वेदांत सिद्धांत में यह माना जाता है कि अपरोक्ष भ्रम की निवृत्ति परोक्ष ज्ञान से नहीं होती। अपरोक्ष ज्ञान से ही अपरोक्ष भ्रम दूर होता है। जैसे, कभी आप जाते हैं, अपने घर से कहीं अन्यत्र, तो दिशा का भ्रम हो जाता है। ऐसा लगता है कि पूर्व इधर होगा, उलटा। जहाँ पूर्व है वहाँ पश्चिमबुद्धि हो जाती है। और जहाँ पश्चिम है वहाँ पूर्वबुद्धि हो जाती है। कोई समझाता भी है तो समझ में नहीं आता। नहीं, पूर्व तो इधर ही है ऐसा भ्रम जो हो गया है। अब उसकी निवृत्ति कैसे होगी ? किसी के बताने से नहीं होगी। परोक्ष ज्ञान से अपरोक्ष भ्रम की निवृत्ति नहीं होती। सूर्योदय से होनेवाले पूर्व दिशा के अपरोक्ष ज्ञान से ही अपरोक्ष भ्रम की निवृत्ति होती है।

तो, हमारे उपनिषदों में, ब्रह्म का प्रतिपादन करनेवाले वाक्य दो प्रकार के हैं। एक तो हैं - अवांतर वाक्य और दूसरे हैं महावाक्य। जिसमें ब्रह्म का अवांतर रूप से वर्णनी है ऐसे अवांतर वाक्य के केवल असत्त्वापादक भ्रम की निवृत्ति होती है। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। ब्रह्म सत्यस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप

है, अनंत है। सजातीय, विजातीय, स्वगत भेदशून्य है। ऐसा कोई ब्रह्म है। यह तो जब हम उपनिषदों से सुनते हैं, गुरु के मुख से सुनते हैं, तो यह बात मान लेते हैं कि ब्रह्म है। परंतु उससे अज्ञान और अज्ञान के कार्य की निवृत्ति नहीं होती। उसकी निवृत्ति के लिये अपरोक्ष ज्ञान की आवश्यकता है। अवांतर वाक्य से अपरोक्ष ज्ञान नहीं होता, महावाक्य से अपरोक्ष ज्ञान होता है।

अपरोक्ष ज्ञान

आप जानते हैं, महावाक्य चार वेदों के चार हैं। जीव और ब्रह्म की एकता के बोधक वाक्य को महावाक्य कहते हैं। जिससे जीव और ब्रह्म की एकता का बोध हो, ऐसे वाक्य से अपरोक्ष बोध होता है। क्यों ? ब्रह्म के साथ जीव की एकता क्यों ? केवल ब्रह्म का ही वर्णन किया जाय - ब्रह्म सच्चिदानंद स्वरूप है, आनंदस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है, अनंत है, अखंड है - इस रूप में उसका वर्णन करते जाइये। आत्मा से अभेद का उपयोग क्या है ?

आत्मा से अभेद का अनुभव करने की आवश्यकता इसलिये पड़ गयी कि जब तक परमात्मा के स्वरूप का अपरोक्ष साक्षात्कार हम नहीं करेंगे, तब तक केवल कहने मात्र से उस ब्रह्म के स्वरूप का अनुभव नहीं होगा। कैसे होगा ? हम ब्रह्म के संबंध में कोई बात सुन लेंगे, तो मनमें एक आकार बनेगा, कल्पना ही होगी। ब्रह्म ऐसा ऐसा है। तो वह तो ब्रह्म का स्वरूप नहीं हुआ। इसीलिये नहीं हुआ कि ब्रह्म तो अनंत है। वह द्रष्टा की दृष्टि में आ जाय, हमारी बुद्धि के भीतर आ जाय, तो बुद्धि से छोटा ही होगा। परिच्छिन्न ही होगा। तो अब कैसे उसे जाने ?

केनोपनिषद में शिष्य प्रशन करता है, गुरु से, कि महाराज ! यह बताइये कि किसकी प्रेरणा से, किसके संकेत से हमारा मन विषयों में जाता है, किसकी प्रेरणा से घ्राण चलता है, किसकी प्रेरणा से प्राण चलता है, श्रोत्र किससे सुनता है, नेत्र किससे देखता है, किसकी प्रेरणा से वाणी बोलती है ? वह कौन है, जो सबको प्रेरित करता है ?

तो गुरुजी बोले - वह श्रोत्र का श्रोत्र है, मन का मन है, प्राण का प्राण है, चक्षु का चक्षु है, वाणी की वाणी है। इन सब श्रोत्रादि से जब धीर पुरुष आत्मा को अलग कर लेते हैं, इस संसार से मुक्त हो कर अमृत हो जाते हैं।

शिष्य ने सुना। एकांत में बैठकर विचार किया।

एक बात आपको बता दें – वैज्ञानिक प्रयोग में एक वैज्ञानिक के द्वारा किया हुआ प्रयोग दूसरे वैज्ञानिकों के काम में आ जाता है। लेकिन यह जो तत्त्वज्ञानवाला प्रयोग है, वह स्वयं ही करना पड़ता है। जब तक स्वयंनहीं करेगा, स्वयं एकांत में विचार नहीं करेगा, तब तक दूसरों के कथनमात्र से रट तो लेगा, लेकिन अनुभूति नहीं होगी।

तो उसने एकान्त में बैठकर विचार किया, अनुभव किया, लौटकर आया, गुरु से बोला, गुरुजी ! मैं उस ब्रह्म को जान चुका हूँ। गुरु बोले, यदि तूने उसको जान लिया है तो तूने उसके दहर रूप को जाना है। दहर माने परिच्छिन्न। परिच्छिन्न रूप को जाना है। अपरिच्छिन्न रूप को नहीं जाना। अभी और विचार कर। फिर विचारा करने गया। फिर उसने देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण इन सबसे विलक्षण नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त-स्वभाव, अजर, अमर, अनंत, अखंड ब्रह्म के स्वरूप पर विचार किया। तो बड़े आनंद में निमग्न हुआ और लौट कर उसने कहा, गुरुजी, अब मुझे पता चल गया।

बोले, क्या तूने जान लिया ?

बोला, नहीं गुरुजी ! मैं यह तो नहीं कह सकता कि मैंने जान लिया।

तो बोले, यह कहो कि मैंने नहीं जाना।

बोला, मैं यह भी नहीं कह सकता कि मैंने नहीं जाना।

नहिं मन्ये सुवेदेति। नो न वेदेति वेद च।

केन उप. २-२

मतलब, न वेद इति न। वेद च। मैं नहीं जानता ऐसा भी नहीं। मैं जानता भी हूँ। तो यह तेरा ज्ञान कैसा है ? संशयात्मक प्रतीत होता है। तो बोला :

यो नस्तद्वेद तद्वेद। नो न वेदेति वेद च।

केन उप. २-२

जितनें हम लोग गुरुभाई हैं, आपके पास अध्यात्म का चिन्तन करने के लिए रहते हैं, उनमें से जो मेरे समान जानता है, वही जानता है।

तो जानने का रूप है, नो न वेदेति वेद च । मैं नहीं जानता, यह भी नहीं, और जानता हूँ, यह भी नहीं ।

अपने से पृथक् करके यदि आप ब्रह्म को जानेंगें तो वह परिच्छिन्न हो जायेगा और कोई रास्ता है नहीं । तो इसके लिये श्रुतियों ने हमेंमार्ग दिखाया, महावाक्य । आत्मा को सब कोई जानता है । ब्रह्म को जानो चाहे न जानो । कोई ऐसा नहीं जो अपने को न जानता हो । लोग हमसे पूछते हैं, कि महाराज ? परमात्मा है कि नहीं ? हम पूछते हैं कि तुम हो कि नहीं ? अपना तो अस्वीकार नहीं कर सकते । स्वयं तो है ही । अगर तुम नहीं हो तो पूछोगे कैसे ? तो यह मानना पड़ेगा कि मैं हूँ । अहम् अस्मि ।

अब तुम हो तो पहले अपने आपको खोज लो । अपने स्वरूप को देखो । कैसे देखें ? यहाँ भी गड़बड़ी है । जैसे ब्रह्म के स्वरूप को देखने में गड़बड़ी है, वैसे अपने को भी देखने में गड़बड़ी है । इन हाथों की उंगलियों के अग्र भाग को क्या इन्हीं उंगलियों से कोई छू सकता है ? नहीं छू सकता । कोई कितना ही अच्छा, पटु नर्तक हो, सरकसवाला हो, अपने कंधे पर चढ़ सकता है ? वाचस्पति मिश्र कहते हैं, न हि पटुरपि नटवटुः स्वस्कन्धमारोढुमिष्टे । पटु नटवटु भी अपने कंधे पर चढ़ने में समर्थ नहीं हो सकता । कभी सरकस देखने का मौका आये, आप बेशक जायें, और कहें, सब खेल दिखा रहे हो तुम, ठीक है । हम तुम्हें लाख रुपये, मुँहमाँगा इनाम देंगे, अपने कंधे पर चढ़कर तुम दिखा दो । आग पर चढ़कर नाचेगा, और शेर के मुँह में अपनी गरदन रख देगा, लेकिन अपने कंधे पर वह नहीं चढ़ सकता । कर्तृकर्मविरोध होता है । कर्तृकर्मविरोध यह है कि कर्ता अलग होता है, कर्म अलग होता है । वही कर्ता और वही कर्म नहीं हो सकता । अब जैसे हम एक प्रयोग संस्कृत में करें, देवदत्तः ग्रामं गच्छति । हिंदी में, देवदत्त ग्राम को जाता है । यह कहेंगे, तो देवदत्त हो गया कर्ता । ग्राम हो गया कर्म । गच्छति हो गई किया । तो यह हम कह सकते है, देवदत्तः ग्रामं गच्छति । परंतु यह प्रयोग नहीं बन सकता कि देवदत्तः स्वात्मानं गच्छति । देवदत्त अपने आपको जाता है, यह नहीं कह सकते, क्योंकि कर्ता अलग होगा, कर्म अलग होगा । दोनों एक नहीं हो सकते । हम स्वयं जाननेवाले भी हों और जिसको जानते हैं यह भी हो, कैसे हो सकता है ?

दृग्दृश्यविवेक

साधक ध्यान में बैठते हैं। ब्रह्मचिंतन करते हैं। यो वेद तत्त्वं निहितं गुहायाम्। हृदयरूपी गुहा में परमात्मा है, उसको देखने बैठे। दर्शन भी करना है। वहाँ पर गुहा है, हृदयाकाश है, उसमें परमात्मा है। तो आप जिसको देखने जा रहे हैं, वह आपसे अलग है, और आप अलग। आप अपने आपको कहाँ देख रहे हैं ? अपने से भिन्न को ही देख रहे हैं। अपने शरीर के भीतर एक कल्पित आत्मा आपने बनायी है, उस आत्मा का दर्शन करने की बात आप करते हैं। बहुत से लोग इसी में ठग जाते हैं। बहुत से लोग आँख दबा देते हैं, कान दबा देते हैं, प्रकाश हो जाता है। कहते हैं, ब्रह्म का प्रकाश हो गया। हो गया दर्शन !

लेकिन यह ब्रह्म नहीं है। ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः तमसः परमुच्यते। वह ज्योतियों की भी ज्योति है और अज्ञान से पर है। वह आपकी आँख से नहीं दिखेगी, मनसे भी नहीं दिखेगी और अगर आँख और मनसे दिखेगी, तो वह वाणी और मनसे परे परमात्मा का स्वरूप नहीं हो सकता। कैसे हो सकता है ?

इसलिए तत्त्वमसि महावाक्य में तत्-पदार्थ का शोधन, त्वं -पदार्थ का शोधन ही किया जाता है। त्वं-पदार्थ का शोधन, अर्थात् आत्मा से जो भिन्न है उसका आत्मा से पृथक्करण। शरीर से आत्मा को भिन्न नहीं करना है। आत्मा से शरीर को भिन्न करना है, जिसको दृग्दृश्यविवेक कहते हैं। दृग्दृश्यविवेक में यही है कि द्रष्टा से दृश्य को अलग करते जायें। बड़ा सुंदर उदाहरण आता है कि रूपं दृश्यं लोचनं दृक्। रूप दृश्य है और आँख द्रष्टा है। लोचनं दृश्यं मानसं दृक्, आँख दृश्य है, मन द्रष्टा है और मन भी दृश्य है, बुद्धि द्रष्टा है और बुद्धि भी दृश्य है, आत्मा द्रष्टा है और आत्मा केवल द्रष्टा है, दृश्य नहीं है।

रूपं दृश्यं लोचनं दृक् तद्दृश्यं दृक् तु मानसम्।
दृश्या धीवृत्तयः साक्षी दृगेव न तु दृश्यते ॥

तो, दृश्यको आत्मा से हटाओ। ऐसे ब्रह्मज्ञान होता है।

अतत् का निरास

अभी कल-परसों द्वारका में एक विद्वान् ने हमसे पूछा, महाराज ! भागवत में ब्रह्मस्तुति आती है।

ब्रह्मन् ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः ।
कथं चरन्ति श्रुतयः साक्षात् सदसतः परे ॥

श्रीमद्भागवत १०-८७-१

हे ब्रह्मन् ! गुणवृत्ति श्रुतियाँ अनिर्देश्य ब्रह्म को कैसे विषय कहतीं है, जो स्वयं सत्-असत् अर्थात् कार्य और कारण दोनों से विलक्षण है ? तो हमने उनको बताया कि अंत में पढ़ो। श्रुतियाँ आत्मा का उद्बोध करतीं है। किसी सोते हुए सम्राट् को प्रातःकाल आकर बंदीजन उसके गुणगान करके उसे जगाते हैं, उसी प्रकार यह आत्मा सम्राट् है। ये सो जाते हैं। अपने स्वरूप को विस्मृत किये हैं। इसको देख बंदीजन जगाते हैं।

जय जय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणां
त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः ।
अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते
क्वचिदजयाऽऽत्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः ॥

हे अजित ! आपकी जय हो, जय हो। आप स्वभावसे ही समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं, इसलिये चराचर प्राणियों को फँसानेवाली माया का नाश कर दीजिये। इस गुणमयी मायाने दोष के लिए सत्त्वादि गुणों को ग्रहण किया है। सब शक्तियों को जगानेवाले आप ही हैं इसलिए आपके मिटाये बिना माया मिट नहीं सकती। इस विषय में हम श्रुति ही प्रमाण हैं। जब कभी आप गत माया के द्वारा जगत् की सृष्टि करके सुगण हो जाते हैं अथवा उसका निषेध करके स्वरूपस्थिति की लीला करते हैं, तभी हम आपका यत्किञ्चित् वर्णन करने में समर्थ होती हैं।

श्रीमद्भागवत १०-८७-१४

जय जय जहि अजाम् अजित। हे आत्मन्! हे ब्रह्म! तुम्हारी जय हो। जय हो। उसे। अजां जहि। अजा का, माया का विनाश कर डालो। माया को मार डालो। प्रश्न आया कि, किमिति गुणवती हन्तव्या? माया में तो गुण हैं। गुणवान् को कोई नहीं मारता है। तो उत्तर देते हैं, दोषगृभीतगुणाम्। दोष के लिए इसने गुणों को धारण किया है। सत्त्व, रज, तम ये तीन इसके गुण हैं। ये गुण संसार में जीव को आकृष्ट करने के लिए हैं। फँसाने के लिए गुण है। इसलिये माया का नाश कर दो। आपके मिटाये बिना मिट नहीं सकती चलो, मारो। लेकिन मेरे पास शक्ति कहाँ से आयेगी? यदात्मना समवरुद्ध-समस्तभगः। तुम्हारे भीतर समस्त जगत् के सार निगम-पदार्थों की शक्ति से आत्मा का बोधन। आप अपने स्वरूप में स्थित रहते हुए भी कभी कभी माया से संसार की रचना करते हैं। इसकी ओर देखकर मूढ़ हो जाते हैं। लेकिन यह समय सोने का नहीं है। उठो।

इस तरह से श्रुतियाँ इस आत्मारूपी सम्राट् को जगाती हैं। अतन्निरसनेन भवन्निधनाः। अतत् माने जो वह नहीं है उसका निरास करके श्रुतियाँ अंत में अपना भी निषेध कर देती हैं और आप में ही अपनी सत्ता खोकर सफल हो जाती हैं। श्रुतियाँ आत्मा में पर्यवसित हो जाती हैं। जो नहींहै उसका निषेध कर दिया।

यहाँ रामचरितमानस का प्रसंग सुनाते हैं। भगवान् रामचंद्र लक्ष्मण और सीता के साथ वन की ओर जा रहे हैं। आगे आगे राम, उनके पीछे सीता और उनके पीछे लक्ष्मण। गोस्वामी तुलसीदासजीने वर्णन किया है -

आगे राम अनुज पुनि पीछे। मुनिवर वेष बने अति काछें॥
उभय बीच सिय सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बीच माया जैसी॥

आगे श्रीरामजी हैं, और उनके पीछे छोटे भाई लक्ष्मणजी हैं। दोनों ही मुनियों का सुंदर वेश बनाये अत्यंत सुशोभित हैं। दोनों के बीच श्रीजानकीजी कैसे सुशोभित है, जैसे ब्रह्म और जीव के बीच माया हो।

राम. अयोध्याकांड

गाँव के लोग भगवान् श्रीराम के मनोहर रूप को देखकर मुग्ध हो जाते हैं। दौड़ दौड़ कर दर्शन करते हैं। पर थोड़ी देर देखकर उन्हें तृप्ति नहीं

होती। तो किसी बहाने से भगवान् को रोकते हैं। कोई कहता है महाराज! जरा जल पी लीजिए। कोई कहता है कि आप नहीं पीते हैं तो कमसे कम लक्ष्मण को और सीता को तो जल पीने दीजिये। और कोई कोमल किसलयों का आसन बिछाकर कहता है महाराज! थोड़ा विश्राम कीजिये। कोई कहता है, अब तो शाम हो गयी। अब कल सबेरे जाना। इस तरह भगवान् के दर्शन के लिए लोग आकुल हो जाते हैं। दौड़ पड़ते हैं।

इसी बीच एक घटना हुई। किसी एक स्थान पर भगवान् श्रीराम बैठ गये। और गाँव की वधूटियों ने जानकीजी को घेर लिया और उनसे पूछा कि हम आपसे एक प्रश्न करना चाहती हैं। चंचल स्वभाव है। डरती तो हैं, लेकिन आप बुरा न मानियेगा। यह बताइये कि आपके साथ जो करोड़ों कामों को लज्जित करनेवाले दो पुरुष हैं; ये आपके कौन हैं?

राजकुमारी विनय हम करहीं। तिय सुभायँ कछु पूँछत डरहीं।
कोटि मनोजलजावनहारे। सुमुखि कहहुँ को आहिं तुम्हारे॥

राम. अयोध्याकांड

तो इसमें तो सीधे सीधे यह अर्थ निकलता है कि इन दोनों से आपका कौन सा रिश्ता है। ये करोड़ो कामों को लज्जित करनेवाले आपके क्या लगते हैं? तो जानकी जी बोलीं:

सहज सुभाय सुभग तनु गोरे। नाम लखनु लघु देवर मोरे॥

राम. अयोध्याकांड

जिनका सरल स्वभाव है, गौर वर्ण है, लक्ष्मण नाम है, वे मेरे लघु देवर हैं। इसका मतलब क्या हुआ? ये देवर हैं तो ये कौन हैं? समझ जाओ। कहने की आवश्यकता ही नहीं है। जो नहीं है, उसका निषेध कर दिया। अवचनेनैव प्रोवाच। बिना कुछ कहे ही कह दिया। यही श्रुति की रीति है। जानकीजी श्रुति हैं। उन्होंने लक्ष्मण का निषेध कर दिया और राम को बता दिया। अतन्निरसनेन भवन्निधनाः।

आवरण भंग

तो, द्रष्टा से दृश्य को हटाकर जो सबका निषेधावधि, जिसका निषेध

नहीं किया जा सकता – सबका निषेध करनेवाले का निषेध कौन करेगा ? – वह तो रहेगा ही । तो जो सबका निषेधावधि है, वह त्वं – पद का लक्ष्यार्थ हैं और उसको सब जानते हैं । जैसे दर्पण में हम अपना प्रतिबिंब देखते हैं, तो पहले दर्पण को देख लेते हैं, तब उसमें प्रतिबिंब देखते हैं । बिना दर्पण को देखे कोई प्रतिबिंब को देख सकता है ? इसी तरह हम अपने आपको जानते हैं तभी और किसी को जान सकते हैं । अपना ज्ञान तो सबसे पहले है । इसीलिए किसीने पूछा, आत्मा के अस्तित्व में प्रमाण क्या है ? तो हमारे वेदांती दार्शनिकों ने कहा :

प्रमाता च प्रमाणं च प्रमेयं प्रमितिस्तथा ।
यस्य भासाऽवभासन्ते मानं ज्ञानाय तस्य किम् ॥

सदाचारानुसंधान ३३

प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, प्रमिति जिसके द्वारा जाने जाते हैं, उसको जानने के लिए किस प्रमाण की आवश्यकता है ? प्रमाकरणं प्रमाणम् । प्रमा के करण को प्रमाण कहते हैं । तो, जितने भी प्रमाण हैं, वे जिससे सिद्ध हो रहे हैं, उसको अलग से जानने की आवश्यकता नहींहै । उसको हम आप जानते हैं । और उसीको, जिसको हम जानते हैं उसीको श्रुतियों ने कहा, यही ब्रह्म है । हो गया ? आवरणभंग हो गया । आवरणभंग होना ही साक्षात्कार है ।

बड़ी सरल बात है । कोई एक सज्जन थे । बैठे ट्रेन में, हरिद्वार जाने के लिये । किसी महात्मा के संबंध में उन्होंने सुन रखा था कि उनके दर्शन करने से बहुत लाभ हो सकता है । जब वे ट्रेन में बैठे तो उनको डिब्बे में एक महात्मा मिल गये । उनसे बात करते हुए, सत्संग करते हुए हरिद्वार पहुँचे । स्टेशन पर उतरने के बाद महात्माजी ने पूछा कहाँ जाओगे ? तो उन्होंने पूछा आप कहाँ जायेंगे ? महात्माने किसी मठ का नाम बताया । इसी मठ का नाम उन्होंने भी बताया । दोनों उसी मठ में पहुँचे । और उन्होंने मठ में जाकर महात्मा का नाम लेकर पूछा कि महात्मा कहाँ हैं ? तो लोगों ने बताया कि ये तो आपके साथ ही हैं ! अब साक्षात्कार हुआ । जब तक चल रहे थे, तब तक कुछ नहीं हुआ । साथ ही थे । देखते थे, सुनते थे, बोलते थे, हँसते थे । लेकिन जब तक किसीने बताया नहीं, तब तक ज्ञान नहीं हुआ ।

तो, परमात्मा का जो ज्ञान है वह नये प्रकार से नहीं होता। पहले आपको अज्ञान था, अब ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। पहले से ही आप ज्ञानी हैं। ज्ञानस्वरूप आप हैं। नित्यप्राप्त की प्राप्ति और नित्यनिरस्त का निरसन है। जिसका नित्य निरास है उसीका निरसन है। जैसे हमारे पैर में किसीने फूलों की माला लपेट दी और हमें भ्रम हो जाय कि साँप तो नहीं लिपट गया। हम घबराकर उसको पैर से उछालते हैं। तो उछालते माला गिर गयी। कहने लगे कि भाई साँप हट गया। कहाँ हटा ? हटा ही था पहले से। इसी तरह विस्मृत कंठमणि। अपने गले में मणि है। हम भूल गये। पूछते हैं मेरी मणि कहाँ, मेरी मणि कहाँ, मेरी माला कहाँ ? किसीने कहा, गले में तो है। अच्छा, हाँ, मिल गयी। अनमिली कब थी ?

आत्मा का ज्ञान ही आत्मा की प्राप्ति है। परमेश्वर की प्राप्ति परमेश्वर के बोध से पृथक् नहीं है। परमेश्वर का बोध ही परमेश्वर की प्राप्ति है। पर वह परमेश्वर का बोध भी नित्य है। जो महावाक्य से बोध होता है, वह केवल आवरण का भंग करता है। वह बोध ज्ञान को उत्पन्न नहीं करता है। ज्ञान तो पहले ही से है। इसीलिये कहा गया :

ब्रह्मण्यज्ञाननाशाय वृत्तिव्याप्तिरपेक्षते ।
फलव्याप्तत्वमेवास्य शास्त्रकृद्भिर्निवारितम् ॥

ब्रह्म में अज्ञान के नाश के लिये केवल वृत्तिव्याप्ति की अपेक्षा है। शास्त्रकारों ने फलव्याप्ति को खंडित किया है। उसका निवारण किया है।

पंचदशी ७

समझ लीजिये दृष्टांत से। अँधेरे कमरे में दो घड़े रखे हैं। एक घड़े के नीचे मणि है और एक घड़े के नीचे नारियल है। घड़ा दोनों के दर्शन में बाधक है, आवरण है। दंडे से हम घड़ेको तोड़ते हैं। नारियलवाले घड़े को तोड़ते हैं तो नारियल को देखने के लिये हमें टॉर्च चाहिए। लेकिन मणिवाले घड़ेको अगर तोडेंगे तो घड़े को केवल तोड़ने की ही आवश्यकता है। मणि को देखने के लिए दूसरे प्रकाश की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि वह मणि स्वयंप्रकाश है। इसी तरह आत्मा में। यही अज्ञान है, कि कुछ दूसरा है ?

इसीका तो निवारण करना है। आत्मा का तो ज्ञान सबको ही है। महात्माजी तो पहले ही से थे ! केवल यह दिखाना है कि ये है।

हमारे यहाँ एक है प्रत्यभिज्ञा दर्शन। प्रत्यभिज्ञा दर्शन और वेदांत दर्शन में विशेष भेदनहीं है। केवल वे ईश्वर के साथ अभेद मानते हैं और जो वेदांत है, वह ईश्वर का जो वाच्यार्थ है उससे नहीं, उसका जो लक्ष्यार्थ है, उससे अभेद मानता है। दृष्टांत वहाँ भी बड़ा सुंदर है। पहले कभी नहीं देखे हुए नायक के गुणगणश्रवण से प्रवृद्ध अनुरागवाली कोई कामिनी मदनविह्वला हो जाती है। विरह के क्लेश को सहन न कर सकने के कारण सखीसे वह अपनी अवस्था का निवेदन करती है। करते करते अपने प्रियतम के दर्शन के लिए इतनी व्याकुल हो जाती है कि अंततोगत्वा वह मूर्च्छित हो जाती है। इतने में उसका प्रियतम आता है। उसके पास बैठकर उसे जगाता है। लेकिन उस स्त्री का दुःख दूर नहीं होता है। जब सखी बताती है कि, जिसके लिये तू तड़प रही है, वह यही है, तब गुणों के परामर्श से नायक को जैसे वह पहचानती है उसका सारा दुःख दूर हो जाता है। वह था तो पहले से ही, लेकिन यह वही है यह ज्ञान नहीं था। इसलिये महावाक्य की आवश्यकता है।

महावाक्य से ब्रह्म और जीव दोनों को लाभ होता है। लाभ ? कौन सा लाभ ? ब्रह्म अनंत है, अखंड है, अपरिच्छिन्न है, लेकिन अपरोक्ष नहीं और जीव अपरोक्ष तो है, लेकिन वह परिच्छिन्न है, सीमित है। तो ब्रह्म के साथ एक होने पर जीव में अपरिच्छिन्नता आती है और जीव के साथ अभेद होने पर ब्रह्म में अपरोक्षता आती है। इस तरह महावाक्य द्वारा परब्रह्म परमात्मा का बोध होता है।

हमने आपको यह बात इस प्रसंग में सुनायी :

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥

भ. गी. १०-११

आत्मभाव में स्थित हो करके मैं उनके अज्ञान का विनाश कर देता हूँ। ज्ञानदीपेन भास्वता। महावाक्यजन्य अखंडाकार ब्रह्माकाराकारित वृत्ति में अधिरूढ चैतन्य के द्वारा अज्ञान और तत्कार्य का निषेध होता है। बाध होता है।

सीधे सीधे ब्रह्म अज्ञान का विरोधी नहीं है। जैसे आप देखिये - हम कहते हैं कि बदली से सूर्य ढँक गया। बदली से सूर्य ढँक गया। बदली से सूर्य ढँक गया, ऐसा जब कहते हैं तब बदली से सूर्य ढँका है, यह हम कैसे जानते हैं ? सूर्य के प्रकाश से ही। उसी तरह, अहं ब्रह्म न जानामि, मैं ब्रह्म को नहीं जानता यह किससे जान रहे हैं आप ? कौन जानता है ? ब्रह्म से ही तो जानता है। और ब्रह्म ही जानता है। तो उसमें अज्ञान है कहाँ ? ब्रह्म अज्ञान का विरोधी नहीं है। न वह साधक है, न बाधक। सूर्य की रश्मियाँ रुई की राशि में पड़ती है, परंतु रुई की राशि उससे नहीं जलती। परंतु सूर्यकांत मणि से संक्रांत करके उन्हीं किरणों को अगर रुई में डाला जाय तो रुई जल जायेगी। उसी प्रकार ब्रह्म तो ज्ञानस्वरूप है लेकिन उससे अज्ञान का नाश नहीं होता। परन्तु जब वह महावाक्यजन्य ब्रह्माकाराकारित वृत्ति में अधिरूढ होता है तब अज्ञान और तत्कार्य का नाश कर देता है। इसीलिये भगवान् कहते हैं, आत्मभावस्थ:, आत्मभाव में स्थित होकर, ज्ञानवृत्ति में आरूढ होकर मैं उन भक्तों के हृदय के अज्ञान-अंधकार को दूर कर देता हूँ।

सदगुरु की कृपा

यह बात कैसे विदित हो ? हमने प्रारंभ में कहा था-सत्संग से। क्षणमपि सज्जनसङ्गतिरेका भवति भवार्णवतरणे नौका। क्षणमात्र की सज्जनसंगति संसारसमुद्र से पार करानेवाली नौका बन जाती है। कुछ साल सत्संग करो तब तो ठीक है, समझ में भी आनेवाली बात है। लेकिन क्षणमात्र ! जगद्गुरु कह रहे हैं, आदि शंकराचार्य भगवान् का वचन है। वृथा भी नहीं हो सकता। बुद्धि में बात आती भी नहीं, ऐसा लगे ! तो आप मान लीजिये कि आप सो रहे हैं। स्वप्न देख रहे हैं। स्वप्न में आप अपने मकान में बैठे हैं। एकाएक भारी वर्षा होने लगी। वर्षा के कारण बाढ़ आ गयी। नदी बढ़ते बढ़ते गाँव को डुबोने लगी। जलप्लावन हो गया। पशु बहने लगे। मनुष्य बहने लगे। मकान बहने लगे और हम यह देख रहे हैं कि हमारे मकान में भी पानी आ गया। और हम भी डूबने जा रहे हैं और हम पुकार रहे हैं बचाओ, बचाओ। नाव, नाव, नाव, नाव। नजर चारों तरफ डालते हैं लेकिन नाव का पता नहीं है। हम

चिल्ला रहे हैं बचाओ, बचाओ ! इतने में कोई कहता है, अरे उठ। कहाँ पानी ? पानी कहाँ है ?

हो गया एक क्षण में ? एक क्षण में दुःख दूर हो गया। गोस्वामीजी ने कह दिया है :

जौं सपनें सिर काटै कोई। बिनु जागें न दूरि दुख होई।

जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई ॥

जिस तरह स्वप्न में कोई सिर काट ले तो बिना जागे वह दुःख दूर नहीं होता। हे पार्वती ! जिनकी कृपा से इस प्रकार का भ्रम मिट जाता है, वही कृपालु श्रीरघुनाथजी है।

राम. बालकांड

जैसे स्वप्न में कोई हमारा सिर काट दे, हम देख रहे हैं स्वप्न में कि हम मर गये, घरवाले रो रहे हैं, कह रहे हैं हमारा क्या होगा ? रोते रोते बड़े बूढ़े लोगों ने कहा अर्थी बनाओ। बाँस ले आये। शव को उसमें लिटाकर रस्सी से बाँध दिया। कफन ओढ़ा दिया। रामनाम सत्य है कह कर ले चले। ले गये श्मशान में। चिता में रख दिया। आग लग लगी, चिता जलने लगी। हम सोच रहे हैं, हम मर गये। हमारा क्या होगा ? और हमारे परिवार का क्या होगा। इतने में किसीने धक्का दिया। नींद खुल गई। सब सहीसलामत। हुआ एक क्षण में कि नहीं हुआ ? जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई। जिसकी कृपा से सब भ्रम मिट जाते हैं। गिरिजा सोई कृपाल रघुराई। वही भगवान् हैं। वही विश्वनाथ है। वही गुरु हैं।

भगवान् सदुगुरु है। सद्गुरु बड़े ही महत्त्व के हैं क्योंकि वे हमारे संसाररूपी भ्रम को, स्वप्न को दूर कर देते हैं। हमें जगा देतें हैं। तो सज्जनसंगति का अर्थ यह हुआ कि जो जागनेवाला है वह सोते हुए को जगाता है। जो स्वयं सो रहा है, वह क्या जगायेगा ? तो ऐसे जागनेवाले सत्पुरुषों के समीप बैठने से क्षणमात्र में ही संसार का पता नहीं लगता कि गया कहाँ ? सारा का सारा संसार – समुद्र विलुप्त हो जाता है। भवति भवार्णवतरणे नौका। इसीलिये सत्संग को बड़ा महत्त्व दिया गया है।

श्री राम जय राम जय जय राम।

परम पूज्य जगद्गुरु शङ्कराचार्य ज्योतिष् एवं द्वारका शारदापीठाधीश्वर स्वामी श्री स्वरुपानन्द सरस्वतीजी महाराज का पावन सन्देश

आत्मकृपा ही सर्वोपरि

श्रीमद्भागवत में भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने प्रिय सखा उद्धव को समझाते हुए कहा - विश्वस्त्रष्टा परमेश्वर ने विविध प्रकार के पुरों (शरीरों) की रचना की। वृक्ष, सरीसृप, मृग, खग, मत्स्य का निर्माण किया और उनको किसी से भी सन्तोष नहीं हुआ। जब सबके अन्त में उन्होंने मनुष्य बनाया और देखा कि मनुष्य के भीतर ऐसी बुद्धि है, जिससे ब्रह्म का साक्षात्कार किया जा सकता है तो उन्हें आनन्द का अनुभव हुआ। ब्रह्म - साक्षात्कार की क्षमता के कारण ही मनुष्य परमेश्वर की सर्वोत्तम कृति माना जाता है क्योंकि अन्य शरीरों में इस क्षमता का सर्वथा अभाव है।

अध्यात्म - शास्त्र में बताया गया है कि ब्रह्मलोक में छाया और धूप के समान माया से विलक्षण ब्रह्म का अनुभव होता है। उससे नीचे के लोकों में चंचल और मलिन सरोवर में दिखाई पड़नेवाले चन्द्रमा के प्रतिबिंब के समान तथा मनुष्य लोक में दर्पण में दिखनेवाले प्रतिबिंब के समान ब्रह्मदर्शन होता है। इस दृष्टि से देखा जाय, तो मनुष्य शरीर का अन्य शरीरों से अधिक महत्त्व है।

यह भी माना जाता है कि चौरासी लाख योनियों में भटकते-भटकते यह जीव जब परिश्रान्त हो जाता है तब अकारणकरुण, करुणावरुणालय, सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर इस जीव की दीन दशा पर दयार्द्र होकर इसको मानवशरीर देते हैं। इसलिये इसके द्वारा परमेश्वर के स्वरूप का साक्षात्कार करने का प्रयत्न करना इसका परम कर्तव्य होने के साथ-साथ भगवान् के प्रति कृतज्ञता का द्योतक है। जो काम पशु-पक्षियों के शरीर से नहीं हो सकता, मनुष्य शरीर से वही काम करना चाहिए। खाना, पीना, डरना, मरना और सन्तान उत्पन्न करना तो दूसरे शरीर से भी हो सकता है। इसके लिये मनुष्य - देह का उपयोग करना बुद्धिमत्ता नहीं है।

ब्रह्मसाक्षात्कार केवल कर्तव्य ही नहीं, प्राणों का पुरुषार्थ भी है। पुरुषार्थ उसे कहते हैं, जिसको अपनी सभी चेष्टाओं के द्वारा प्राप्त करने का पुरुष प्रयत्न करता है। समस्त दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति प्राणी का परमपुरुषार्थ है। परन्तु जिस उपाय से वह उसे प्राप्त करना चाहता है वह वास्तविक उपाय नहीं है।

अनुकूल विषयों में राग और प्रतिकूल विषयों में द्वेष से प्रेरित होकर ही प्राणी दुःखों के परिहार और सुख ही प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होते है किन्तु इसका परिणाम विपरीत ही होता है। परिणाम में - दुःखद होने, शारीरिक, मानसिक, भौतिक तापों से ग्रस्त होने और प्रकृति के सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों में अन्तःकरण में परस्पर अन्तर्विरोध के कारण विवेकी पुरुष के लिए विषय और इन्द्रियों के संयोग से होने वाले दुःखरूप ही है। प्रकृति के गुणों के ह्रास-विकास से मन की रुचि परिवर्तित होती रहती है। यही कारण है कि जो प्राणी या पदार्थ कभी अत्यधिक प्रिय प्रतीत होता है, कालान्तर में वही अप्रिय प्रतीत होने लगता है।

प्रेम और आनन्द एक साथ देखे जाते हैं। जिसमें प्रेम होता है, उसमें आनन्द की अनुभूति होती है। जिसमें हमारा प्रेम होता है, हम चाहते हैं, वह सदा बना रहे, उसका अस्तित्व कभी न मिटे।

प्रत्येक प्राणी अपने अस्तित्व की रक्षा करता है, वह कभी अपने आप से द्वेष नहीं करता, इससे सिद्ध होता है कि सबसे प्रिय अपनी आत्मा ही है वह सब प्राणियों का परमप्रेमास्पद है और इसी कारण परमानन्दस्वरूप है। सर्वभूतात्मा और सर्वव्यापी होने के कारण यही परमात्मा कहलाता है। देशकाल और वस्तुरूप समस्त जगत् का साक्षी होने के कारण वह देश-कृतकाल-कृत और वस्तु-कृत परिच्छेद से रहित होने के कारण बृहत् अर्थात् ब्रह्म के रूप में वर्णित होता है।

ब्रह्म तत्त्व के अज्ञान से ही आत्मा का कर्तृत्व - भोक्तृत्व की भ्रान्ति है। कर्तृत्व-भोक्तृत्व का आत्मा में आरोप होने से ही कर्म होते हैं। कर्म ही जन्म के कारण बनते हैं। जन्म ही जरा-मरण एवं शोक-मोह का कारण है।

ब्रह्म का बोध अज्ञान और अज्ञान के कार्य जन्म-मरण का निवर्तक होता है। इसी से समस्त दु:खों की आत्यन्तिक निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति हो सकती है।

ब्रह्मानुभूति के लिए ब्रह्म जिज्ञासा बहुत आवश्यक है। उत्सुकता और जिज्ञासा में अन्तर है। उत्सुकता तभी हो तो भी कुछ नहीं होता, पर जिज्ञासा का उदय होने पर जब तक उसकी शान्ति नहीं हो जाती, जिज्ञासु व्याकुल रहता है। जैसे किसी के केशों में आग लग जाने पर बिना आग बुझाये उसको शान्ति नहीं मिलती। वैसी ही दशा जिज्ञासु की होती है। श्रुति कहती है - 'इस परमात्मा को यज्ञ, दान और तप से जानना चाहिये'। इसका तात्पर्य है - निष्कामभाव से यज्ञ, दान, तप करने पर मन शुद्ध होता है और उसके शुद्ध होने पर ही जिज्ञासा उत्पन्न होती है। जिज्ञासु ही श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण में जाकर आध्यात्मिक शास्त्रों का श्रवण-मनन-निदिध्यासन करता है।

आत्म-कल्याण के लिये चार कृपाओं की आवश्यकता पड़ती है - ईश्वरकृपा, शास्त्रकृपा, गुरुकृपा और आत्मकृपा। आत्मकृपा के बिना और प्रत्येक कृपा अकिंचित्कर हो जाती है। इसलिये हमें अपने ऊपर कृपा करनी चाहिए। जीव अनादि काल से ''पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी-जठरे शयनम्' के चक्र में पड़ा है। ईश्वर की कृपा हुई, मानव शरीर मिला। शास्त्रों ने आध्यात्मिक ज्ञान दे दिया। गुरु ने रहस्य समझाया, अब हमें अपने ऊपर कृपा करनी चाहिए।

मानव शरीर को सार्थक करने के लिए बद्धपरिकर होकर भगवान् के चरणों में भक्ति रखते हुए गुरु और आत्मा को भगवान् से अभिन्न समझते हुए, साधना के पथ पर समस्त बाधाओं को पार करते हुए, अपने लक्ष्य को सदा सम्मुख रखते हुए, परमार्थ पथ पर निरंतर बढ़ते रहने का प्रयत्न करना चाहिए।

परम पूज्य जगद्गुरु शङ्कराचार्य ज्योतिष् एवं द्वारका शारदापीठाधीश्वर स्वामी श्री स्वरुपानन्द सरस्वतीजी महाराज का पावन सन्देश

शक्ति पूजा

भगवान् आद्य शङ्कराचार्य को षण्मत स्थापनाचार्य कहा जाता है क्योंकि उन्होंने सनातन धर्मियों को छः रूपों में भगवान् की उपासना का उपदेश दिया है। शिव, शक्ति, विष्णु, गणपति और सूर्य परमेश्वर के साकार स्वरूप हैं। उनके अतिरिक्त उनका इनसे विलक्षण निर्गुण निराकार रूप है। जिसकी उपासना योगी लोग करते हैं। वास्तव में ये सभी रूप एक ही परमात्मा के हैं। जैसे एक ही नट अनेकों प्रकार के रूप ध रण करके अभिनय करते समय भिन्न-भिन्न नामों से अभिहित होता है। उसी प्रकार एक ही परमात्मा विविध रूप धारण करता है। परमात्मा एक है, उसके रूप अनेक हैं।

'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' यह श्रुति इसी रहस्य का उद्घोष करती है।

शक्ति की उपासना सनातनधर्मी समाज में व्यापक-रूप से की जाती है। द्विजाति - मात्र यज्ञोपवीत धारण करके गायत्री की उपासना करते हैं। जैसे गायत्री शक्ति का एक रूप है। उसी प्रकार ब्रह्माणी, रुद्राणी, लक्ष्मी, सीता, राधा, रुक्मिणी के रूप में साधक विविध प्रकार की शक्ति की उपासना करते हैं। शाक्त दर्शन के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में शिव और शक्ति दो ही तत्त्व थे।

"वन्दे गुरुपदद्वन्द्वमवाङ्मनसगोचरम् ।
रक्त शुक्लप्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महं ॥

अर्थात् मैं मन वाणी से अगोचर उन गुरु चरणों की वन्दना (ध्यान) करता हूँ जो वास्तव में रक्त, शुक्ल प्रभा से मिश्रित त्रिपुरा का अतर्क्य तेज है। रक्त - प्रभा शक्ति की तथा शुक्ल प्रभा शिव की है। साधक गुरु के चरणारविन्दों में इन दोनों प्रभाओं के रुप में शिव और शक्ति को देखता है।

प्रकाश और विमर्श में मणि की प्रभा के समान अभेद है। शिव की अभिन्न शक्ति का विलास ही समस्त जगत् है। जंगत् के सभी पदार्थो में यह अनुस्यूत है। पंचदशी में आचार्य विद्यारण्य स्वामी कहते हैं। "शक्त्यः सर्वभावानामचिन्त्यज्ञानगोचरा।"

अर्थात् सभी पदार्थों में कार्य उत्पादन केअनुकूल शक्ति विद्यमान रहती हैं। इसका समष्टि रूप ही महाशक्ति है। महामाया है। शक्ति को हम माता के रूप में देखते हैं, क्योंकि वह समस्त जगत् का पालन करती है।

हम देखते हैं कि जब तक शिशु असमर्थ रहता है, तब तक माता अत्यन्त वात्सल्य से उसकी रक्षा, पालन-पोषण तथा पालन करती है। मानवी माता में खोजने पर किसी को स्वार्थ दिखाई पड़ सकता है। पर हम देखते हैं कि जब पक्षी के अण्डे देने का समय आ जाता है तो वह पहले से ही घोंसले के रूप में कोमल शय्या का निर्माण में जुट जाता है और जब अण्डे देता है तो उसको प्यार से सेता है। अण्डों के फूटने पर उससे पंखविहीन कोमल चोंच वाले पक्षी - शावक निकलते हैं तो पक्षियों की माता घोंसले से उड़कर जाती है और चारा चुगकर स्वयं भूखी रहकर भी अपने गले के थैली में चारा भरकर सायंकाल अपने घोंसले में लौटकर आती है। पक्षी - शावक उसे घेर कर चीं-चीं करते हुए अपनी चोंच खोलकर खड़े हो जाते हैं और वह उनकी चोंच में चोंच डालकर गले की थैली में संचित आहार निकाल करके स्वयं भूखी रहकर भी परम संतोष का अनुभव करती है। प्रश्न होता है कि उस निर्मोही पक्षी में यह वात्सल्य और ममता कहाँ से आई ? उसके पीछे स्वार्थ की कल्पना भी नहीं की जा सकती क्योंकि पंख निकलते ही पक्षी उड़कर अपना आवास अन्यत्र बनायेगा और अपनी माँ को पहचानेगा भी नहीं ? स्पष्ट है कि विश्व के पालन की इच्छा से जगदम्बा का वात्सल्य भी माताओं के हृदय में अभिव्यक्त होता है।

आद्य शङ्कराचार्य भगवान् ने सौन्दर्य लहरी के प्रारंभ में कहा है -

शिवःशक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो भवति कुशलः स्पन्दितुमपि।

अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्च्यादिभिरपि।
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति।

शिव में से यदि इकार की मात्रा निकाल दी जाय, तो शव हो जाता है। यही महाशक्ति है। अपने उपासकों के लिए दश महाविद्या और नव दुर्गा के रूप में अवतरित होती हैं। दश महाविद्याओं में षोडशी अन्यतम है। षोडशी महाविद्या को ही राजराजेश्वरी ललिता महात्रिपुरसुन्दरी कहा जाता है। भण्ड दैत्य के द्वारा संत्रस्त होकर जब देवताओं ने यज्ञ के द्वारा जगदम्बा की आराधना की तो अग्नि से एक दिव्य तेज प्रकट हुआ। देवताओं की आँखें उस तेज से अभिभूत होकर बन्द हो गयी। उन्होंने पुनः उसी प्रकार का यज्ञ किया। इस बार यज्ञकुण्ड से बाल सूर्य के समान अरुण वर्ण का अद्भुत तेज प्रकट हुआ। उसे देख कर देवता मुग्ध हो गए। उन्हें उसके भीतर एक आकृति दिखलाई पड़ी तो क्रमशः स्पष्ट होती गई। उसके तीन नेत्र और चार भुजाएँ थीं। लगता था जैसे मूंगे की लता की चार शाखाएँ हों जिनमें वे इक्षु धनुष, पुष्पवाण, पाश, अंकुश धारण किए हुए थीं। सूर्य चन्द्र और अग्नि मानों उनके तीन नेत्र थे। अरुण परिधान और विविध अलंकारों से वे अलंकृत थीं। मस्तक पर मुकुट, कानों में कुण्डल, ग्रीवा में हार, कटि में कांची और चरणों में नूपुर शोभा पा रहे थे। सृष्टि – स्थिति – संहार – तिरोधान और अनुग्रह इन पाँच तत्त्वों से पाँच देवता ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव (क्रमशः) सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गए और उन्होंने राजराजेश्वरी माता के आसन के रूप में स्वयं को स्वीकार करने का अनुरोध किया। जगदम्बा की स्वीकृति पाकर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर सिंहासन के चार पाये बन गए। सदाशिव ऊपर का फलक बने। उनके नाभिकमल पर जगदम्बा विराजमान हैं। यह उनका ब्रह्मरूप सिंहासन है। अब देवताओं ने प्रार्थना की "माँ, आपका कोई पति होना चाहिए। इस पर उन्होंने स्वयं को दो रूपों में परिणत कर लिया। वे कामेश्वर और कामेश्वरी होकर 'कामेश्वराङ्कनिलया' कहलायीं। उन्होंने मणिद्वीप को अपना आवास बनाया। सौंदर्य लहरी में इसका वर्णन है :–

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटी परिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे ।
शिवाकारे मञ्चे परमशिव पर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम् ।

अर्थात् अमृत समुद्र के मध्य में मणिद्वीप पर कल्पवृक्ष की वाटिका है । उसके भीतर नौ रत्न के परकोटे हैं । मध्य में जगदम्बा का भवन है । उसमें अमृत की बावलियाँ हैं । कभी-कभी जगदम्बा कदम्व वन में बिहार करती हैं । कदम्ववन के मध्य चिन्तामणि का भव्य महल है । उसके भीतर कल्पवृक्ष के नीचे माँ राजराजेश्वरी का ब्रह्ममय सिंहासन है, जिसमें विराजमान होकर वे अखिल ब्रह्माण्डों का सञ्चालन ब्रह्मा, विष्णु, ईश्वर और सदाशिव को शक्ति देकर करती हैं । उनका यह मणिद्वीप और उसके आस-पास का क्षेत्र भी 'श्री चक्र नगर' कहलाता है । श्री चक्र के द्वारा यह जाना जा सकता है कि जगदम्बा की अंगभूता किस देवी का कहाँ स्थान है । श्री चक्र में नौ आवरण होते हैं । उन आवरणों में अन्तिम आवरण त्रिकोण का है, जिसके मध्य में बिन्दु है । बिन्दु कामेश्वर है, जिस पर कामेश्वरी विराजमान है । वे भगवती ही विविध आवरणों के देवता के रूप में (त्रिकोण, वसुकोण) दशार् युग्म, मन्वस्त्र (चर्तुदश दल) नाग (अष्ट दल) षोडशार् (षोडशदश दल) और वृत्तत्रय - प्रतिष्ठित होकर अवस्थित होती हैं । इसके द्वारा वे इस रहस्य को प्रकट करती हैं कि एक ही तत्त्व अनेक रुपों में दिखलाई पड़ने पर भी वे एक हैं ।

आसुरी शक्तियों के समष्टि रूप भण्ड दैत्य से युद्ध करने के लिए समस्त दैवी शक्तियों से सम्पन्न होकर श्रीचक्र रथ पर आरूढ़ होकर जगदम्बा का अभियान प्रारम्भ होता है । उस समय आसुरी शक्तियों में खलबली मच जाती है । वे अनेकों विघ्न उपस्थित करती हैं, पर जगदम्बा के तेज के सामने सारे विघ्न समाप्त हो जाते हैं । उनकी आठ वर्ष की कन्या बाला त्रिपुरसुन्दरी भण्डासुर के पुत्र का वध करती है । वाराही भण्ड के सेनापति का, राज श्यामला उनके मंत्री का वध करती हैं । यह देखकर भण्डासुर अपनी पूरी शक्ति लगाकार जगदम्बा को पराजित करने के लिए सम्मुख आता है और

युद्ध में स्वयं ही हिरण्य-कश्यपु, हिरण्याक्ष, रावण, कुम्भ-कर्ण, कंस, शिशुपाल, दन्तवक्त्र आदि के रूप धारण करके जगदम्बा पर आक्रमण करता है। जगदम्बा भी अपने हाथों की दश उंगलियों से नारायण के दश अवतारों को प्रकट करके उसका वध कर देती है। राक्षस भी युद्ध करते हुए जगदम्बा पर दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करते हैं। भगवती भी उनके प्रत्युत्तर में ब्रह्मास्त्र, नारायणस्त्र, पाशुपतास्त्र द्वारा प्रहार करती हैं। परन्तु जब भण्डासुर वरदान के प्रताप से इन अस्त्रों से नहीं मरता तो जगदम्बा कामेश्वरास्त्र का प्रयोग करती हैं। जिससे भण्डासुर मारा जाता है तथा उसके सारे सैनिक और उसकी राजधानी शून्यक नगर सभी भस्म हो जाते हैं और अपनी वैरभक्ति के कारण भण्डासुर जगदम्बा के चरणों का सन्निधान प्राप्त करता है।

भगवती राजराजेश्वरी माता त्रिपुरसुन्दरी के अगणित नाम हैं - जिसमें ललिता सहस्त्रनाम, ललिता त्रिशती, अष्टोत्तरशतनाम अधिक प्रचलित हैं।

जगदम्बा के इस रूप की उपासना का क्रम, मन्त्र, तन्त्र और यन्त्र का वर्णन ब्रह्मपुराण, त्रिपुरा रहस्य और परशुराम कल्प-सूत्र में मिलता है। उनकी उपासना के प्रवर्तकों में भगवान् दत्तात्रेय प्रधान हैं। भगवान् दत्तात्रेय के पश्चात् भगवान् आद्य शङ्कराचार्य ने भी इनकी उपासना का उपदेश दिया है। दाशरथि राम से पराजित होकर परशुराम जब शक्तिविहीन होकर ओज, तेज, वीर्य रहित होकर उदास चले जा रहे थे तो नारद जी ने उनको संवर्त नामक योगीश्वर के पास भेजा और संवर्तने परशुरामजी को दत्तात्रेय जी के पास भेजा। दत्तात्रेय जी ने उनको पात्र समझकर श्रीविद्या राजराजेश्वरी के पंचदशासूरि मंत्र का उपदेश दिया। परशुरामजी ने तीन वर्षों तक जगदम्बा की आराधना कर उनका साक्षात्कार प्राप्त किया और पुनः ओज, तेज, बल, वीर्य - सम्पन्न होकर दत्तात्रेय जी के पास आए। दत्तात्रेय जी से उन्होंने पुनः ज्ञान का उपदेश प्राप्त किया जिससे वे जीवन मुक्त हो गये। 'त्रिपुरा रहस्य' नाम की पुस्तक में भगवती त्रिपुरा के चरित्र का विशद वर्णन है। उसके अनेक खण्ड हैं जैसे माहात्म्य खण्ड एवं चर्या खण्ड आदि

सनातन धर्म

अनन्त श्री विभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं द्वारका शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्यजी का पांवन संदेश

सनातन धर्म क्या है ? इसकी परिभाषा है – सना यानि सदा तन माने रहनेवाला। जो सदा रहे, उसे सनातन कहते हैं। सदाभवः सनातनः। यदि हम इसको विस्तार से समझना चाहें तो इस प्रकार समझ सकते हैं। सनातन परमात्मा ने सनातन जीवों के लिए उनके सनातन अभ्युदय निःश्रेयस् के हेतु सनातन वेद शास्त्रों द्वारा जो प्रवृत्ति – निवृत्ति का मार्ग बतलाया है, उसको सनातन धर्म कहते हैं। सनातन धर्म में चार वर्ण व चार आश्रम हैं। क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। सनातन धर्म के चौदह आधार स्तम्भ है – (१) १८ पुराण (२) न्याय, वैशेषिक (३) पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा (४) धर्मशास्त्र, १८ स्मृतियाँ (५) वेदों के ६ अंग (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष्, व्याकरण, तथा चार वेद – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। ये जब मिलाकर चौदह होते हैं जिनसे धर्म का ज्ञान होता है। सृष्टि के प्रारम्भ में जब से मानव का जन्म हुआ तब से वेदों, पुराणों, स्मृतियों, रामायण, महाभारत आदि के द्वारा जन समूहने ऋषि-मुनियों के उपदेश से धर्म को जाना। इस प्रकार तभी से जन समाज धर्म का पालन करता आ रहा है। धर्म के द्वारा समाज में सुव्यवस्था होती है। जनता धर्म का निर्वाध रूप से पालन कर सके, इसकी व्यवस्था राज्य करते थे। आज भी रामराज्य को भारत के लोग आदर्श राज्य मानते हैं।

सब नर करहिं परस्पर प्रीती तथा बैर न कर काहू सन कोई, राम प्रताप विषमता खोई।

हमारे शास्त्रों में चार युगों का वर्णन है। सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग। इन चारों युगों के मनुष्यों की परिस्थिति के अनुकूल शास्त्रों में धर्म के स्वरूप का निर्णय किया गया है। कुछ आधुनिक लोगों का कथन है कि आज की परिस्थिति में स्मृतियों का नव निर्माण किया जाना चाहिये।

क्योंकि स्मृतियाँ प्राचीन युग के अनुरूप थीं, आज के युग के अनुकूल नहीं। अतः उनमें परिवर्तन जरूरी है। किन्तु इस पर प्रश्न यह है कि जब श्रुति में परिवर्तन नहीं हो सकता तो स्मृति में कैसे होगा? हमारे विचार से स्मृतियों में प्रत्येक युग की व्यवस्था पहले से ही है। आवश्यकता उसके क्रियान्वयन की है। सनातन धर्म में जन्मना वर्ण व्यवस्था मान्य है। चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि गुण कर्म के विभागानुसार मुझ ईश्वर ने चातुर्वर्णों की सृष्टि की। इसका अर्थ है कि जिस प्राणी के जैसे गुण कर्म होते हैं, उसके अनुसार प्रभु उसको जन्म प्रदान करते हैं।

आज की परिस्थिति में धार्मिक राज्य समाप्त हो गये हैं। आधुनिक शिक्षा और प्रचार के साधन टी.वी., रेडियो, सिनेमा, पत्र-पत्रिकाएँ और भौतिकवादी नेताओं के भाषण और ग्रन्थ धर्म के विरुद्ध लगातार अभियान छेड़े हुए हैं। वैदिक संस्कारों के लुप्त हो जाने से शिखा, यज्ञोपवीत का बहुसंख्य लोगों ने त्याग कर दिया हैं। खान-पान भी बिगड़ गया है और मनमाना हो गया है। भारत के लोगों को धर्मान्तरित करनेके लिए विदेशों से अरबों रुपये आ रहे हैं, जिनका संगठित रूप से विदेशी मिशनरियाँ हरिजनों, गिरिजनों में जाकर उपयोग करते हुए उनको सनातन धर्म का त्याग करने के लिए विवश कर रही हैं। मठ-मन्दिरों की व्यवस्था भी उतनी सुदृढ़ नहीं है और न ही इतनी सम्पत्ति है कि उनका सामना कर सकें। इसके अतिरिक्त हमारा सनातनधर्मी वैदिक समुदाय भी अनेक सम्प्रदायों में बंटा हुआ है। फिर भी सौभाग्य से वेदों-शास्त्रों का प्रमाणय मानने वाले प्राचीन सम्प्रदायों में एकता के सूत्र विद्यमान हैं, किन्तु अब नये-नये पन्थ जन्म ले रहे हैं, जो अपना जाल फैलाते हुए समाज को आचारहीन बनाकर भीतर से धर्म को खोखला बना रहे हैं। ऐसी स्थिति में आवश्यक है कि वैदिक धर्म के अनुयायी समस्त सम्प्रदायों के धर्माचार्य मिलकर बैठकर सनातन धर्म के हित के लिये मार्ग खोंजें। जिन समुदायों में वर्णाश्रम व्यवस्था सुदृढ़ हैं, उनकी रक्षा के लिए संस्कृत के माध्यम से वेदों, शास्त्रों का अध्ययन - अध्यापन चालू रखा जाय किन्तु जो समुदाय शूद्रप्राय हो गया है, उनमें नाम संकीर्तन एवं भगवद्‌भक्ति का प्रचार किया जाये। सदाचार पूर्वक भगवन्नामसंकीर्तन

भगवद्भक्ति, भगवत्तत्त्व, विज्ञान-योग तथा आयुर्वेद के प्रचार-प्रसार द्वारा जन-समुदाय को सनातन धर्म की परिधि से बाहर न होने दिया जाय। सनातन धर्म में सामान्य धर्म और विशेष धर्म रूप सें दो विभाग किये गये हैं। सामान्य धर्म ही मानव धर्म है। मनु के द्वारा उल्लिखित धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, ज्ञान-विज्ञान, सत्य एवं अक्रोध एवं श्रीमद्भागवत के सातवें स्कन्ध में वर्णित तीस धर्म सामान्य धर्म की कोटि में आते हैं। इनका हम सब लोग सम्मिलित होकर प्रचार करें। सनातन धर्म का एक पृथक् मंच बनाया जाय, जिसमें सभी सम्प्रदायों के आचार्यों को एक मंच पर बैठाकर तात्कालिक परिस्थितियों पर निर्णय लिये जा सकें। ईसाई, मुसलमान, जैन, बौद्ध आदि अवैदिक समुदायों के अपने अपने मंच हैं। पर हमें पंचायती बनाया जा रहा है, जिससे सावधान होने की जरुरत है।

अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शङ्कराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं
द्वारकाशारदापीठाधीश्वर

स्वामी श्री स्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज

के ८१ वें जन्मोत्सव पर पावन-सन्देश

सुख और ज्ञान का साधन : सत्त्वगुण

संसार के सभी प्राणी दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति के आकांक्षी हैं। पर देखा यह जाता है कि दुःख सदा सामने आता है और सुख या तो भूत की स्मृति के रूप में या भविष्य की कल्पना के रूप में ही प्रतीत होता है। वर्तमान में सुख का अनुभव सांसारिक प्राणियों को नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में, दुःख की निवृत्ति और परमसुख की प्राप्ति का एकमात्र उपाय यद्यपि आत्मज्ञान है पर व्यवहार में भी दुःखों से बचा जा सकता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है -

अनविचार रमणीय सदा, संसार भयङ्कर भारी।
सम संतोष दया विवेक से, व्यवहारी सुखकारी॥

इसका अर्थ है - यद्यपि संसार अविचारित रमणीय है, अत्यन्त भयंकर है, फिर भी शम (मन का निग्रह), संतोष, दया और विवेक के द्वारा व्यवहार - योग्य और सुखकारी बन जाता है। वेदान्त के ग्रन्थों में भी दो प्रकार की सृष्टियों का उल्लेख है। एक ईश्वरसृष्टि और दूसरी जीवसृष्टि। पाञ्चभौतिक जगत् ईश्वर सृष्टि है और अहन्ता, ममता से होने वाले दुःख-सुख जीवसृष्टि हैं। इसका उदाहरण है - दो व्यक्ति धन कमाने के लिए,एक ही गाँव से परदेश गये। दोनों ने व्यापार प्रारम्भ किया। एक ने खूब धनोपार्जन कर लिया और दूसरा रुग्ण होकर मर गया। कुछ काल के पश्चात् एक व्यक्ति उनके गाँव की ओर जा रहा था तो पहले ने अपने घर के लोगों के पास अपनी कुशलता का समाचार दिया और यह भी कहा कि हमारा जो मित्र था, उसके घर में उसकी मृत्यु का एवं व्यापार में घाटे का समाचार भी बता देना।

संदेश देने वाले ने दुष्टतापूर्वक संदेश को उलटा कर दिया। जिसके घर का व्यक्ति मर गया था, उसके घर में कुशलता का समाचार दे दिया और

जिसके घर का व्यक्ति जीवित था, उसके घर मृत्यु का समाचार दे दिया। परिणाम यह हुआ कि जिसके घर का प्राणी मर गया था; उसके घर हर्षोल्लास होने लगा और जिसके घर का जीवित और सकुशल था; उसके घर शोक छा गया। ईश्वर की सृष्टि में जो मर गया है, वह जीवसृष्टि में जीवित है इसीलिए सुख हो रहा है और ईश्वरसृष्टि में जीवित होने पर भी जीवसृष्टि में मर गया; इसलिए दुःख हो रहा है।

जीवन में प्रत्येक व्यक्ति को द्वन्द्वों का सामना करना पड़ता है। हानि-लाभ, जय-पराजय, मान-अपमान, निन्दा-स्तुति, शीत-उष्ण आदि का प्रभाव मन पर पड़ता है। यदि अपना मन संतुलित हो तो इन द्वन्द्वों को विवेकपूर्वक झेला जा सकता है। इसीलिए हमें अपने मन की ओर ध्यान देना चाहिए। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के अनुसार जगत् का कारण प्रकृति त्रिगुणात्मिका अर्थात् सत्, रज और तम गुणों वाली है। इसलिए प्रकृति से होने वाले प्राकृत जगत् में और हमारे अन्तःकरण में भी तीन गुण क्रमशः आते हैं। सत्त्वगुण के आने पर ज्ञान का उन्मेष और सुख की अनुभूति होती है। रजोगुण में मनुष्य के हृदय में अनेकों इच्छाओं का उदय होता है और उनकी पूर्ति के लिए कर्मों में प्रवृत्ति आती है। काम-क्रोध भी रजोगुण से उत्पन्न होते हैं। जो हमारी बुद्धि को प्रभावित करके हमें पापकर्मों की ओर ढकेलते हैं।

सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥

सत्त्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है और रजोगुण से निरसन्देह लोभ तथा तमोगुण से प्रमाद और मोह उत्पन्न होते हैं और अज्ञान भी होता है।

यह नियम है कि उत्तम फल, उत्तम कर्मों से प्राप्त होते हैं और अनिष्ट फल, निकृष्ट कर्मों से प्राप्त होते हैं। यदि निश्चय उत्तम है तो उत्तम कर्मों में प्रवृत्ति होगी और निश्चय अविवेकपूर्ण है तो अधम कर्मों में प्रवृत्ति होगी। निश्चय करना बुद्धि का कार्य है। निश्चय को ही अध्यवसाय कहते हैं। प्रायः रजोगुण, तमोगुण से होने वाले विकार बुद्धि को प्रभावित करते हैं और प्रभावित बुद्धि विकारों के अनुरूप निश्चय कर बैठती है। इसको कार्पण्यदोष भी कहा जा सकता है।

बुद्धि का विकारों से प्रभावित होना ही कार्पण्य है और अप्रभावित रहते हुए अपना निश्चय उत्तम बनाए रखना उदार बुद्धि का लक्षण है। बुद्धि उत्तम निर्णय तब करती है, जब निर्विकार होती है और काम, क्रोध, लोभ आदि दोषों से अप्रभावित होती है। इसलिए बुद्धि को विवेकयुक्त बनाए रखना और शम-सन्तोष-दया आदि सद्गुणों से दुर्गुणों को अपने मन में न उठने देना आवश्यक है। ऐसा तभी हो सकता है, जब हमारे कर्मो में शुद्धि हो। यह निश्चय है कि क्रियाशुद्धि से भावशुद्धि होती है। भावशुद्धि से विचारशुद्धि होती है और विचारशुद्धि से उत्तम निर्णय होते है। इसीलिए अपने जीवन में तमोगुण और रजोगुण को कम करते हुए सत्त्वगुण को बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए। सत्त्वगुण बढ़ाने के लिए सत्त्वगुणी आहार आवश्यक होता है। शास्त्र कहते है -

आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धि:, सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः। स्मृतिशुद्धौ सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्ष: ॥

इसका अर्थ हुआ - आहार की शुद्धि से अन्त:करण की शुद्धि, अन्त:करण की शुद्धि से स्मृति मे दृढ़ता। स्मृतिशुद्धि से मनुष्य की मानस ग्रन्थियों का मोक्ष हो जाता है।

आहार केवल वह नहीं है, जो हम मुख से खाते हैं। जो कुछ भी इन्द्रियों से गृहीत होता है, वह आहार ही है। हम आँख से अच्छा देखें, कान से अच्छा सुने और मन से भी सबके कल्याण की बात सोचे। इन्द्रियों से विषयों का जो ग्रहण होता है, उन्हीं को आहार कहते हैं। इन आहारों को शुद्ध करने के लिए उत्तम व्यक्तियों का संग करना चाहिए। सत्साहित्य का अध्ययन करना चाहिए और सबसे मुख्य; प्रात:काल उठकर अपने इष्टदेव का ध्यान करना चाहिए। चार बजे से लेकर छः बजे का समय ब्रह्ममुहूर्त कहलाता है। भगवान् श्रीकृष्ण महान् गृहस्थ थे। उनकी दिनचर्या में आता है -

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय, वायूपस्पृश्य माधवः।
दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम् ॥

इसका अर्थ है - भगवान् माधव ब्रह्ममुहूर्त में उठकर जल का स्पर्श करते थे और प्रसन्न मन और इन्द्रियों से युक्त होकर अज्ञान से परे स्वयं प्रकाश ब्रह्म का ध्यान करते थे।

यदि २४ घण्टे में एकबार भी मन को निर्विकार कर लिया जाय तो उसका प्रभाव दिन भर पड़ता है। बहुत से कलुषित विचार स्वयं ही दूर हो जाते हैं। बहुत सी शंकाएँ दूर हो जाती है। महात्माओं का सत्संग भी इसमें सहायता करता है। उनके आभा मण्डल में सात्त्विकता होती है। इसीलिए उनके दर्शन और समीप बैठने मात्र से अनेकों शंकाओं का समाधान हो जाता है और अनेकों का तो जीवन ही बदल जाता है। विशुद्ध मन उसको कहते हैं, जिसमें समता होती है।

पूर्ण समता आ जाने पर मन उत्तम हो जाता है, मन को ही चित्त कहते हैं, चित्त में दो 'त' कार है। एक 'त' कार विषयों का अध्यास है। यदि उसे मिटा दिया जाय तो चित्त ही ''चिद्'' हो जाता है। वास्तविक तत्त्वज्ञान होने पर ही वर्तमान मे सुखका अनुभव हो सकता है इसीलिए जीवन्मुक्त के सम्बन्ध में कहा गया है -

भविष्यन्नानुसंधत्ते नातीतं चिन्तयत्यसौ ।
वर्तमाननिमेषन्तु हसन्नेवातिवर्तते ।

अर्थात् तत्त्वज्ञानी न तो भविष्य का अनुसन्धान करता है और न ही अतीत की चिन्ता। वह तो वर्तमान में स्थित होकर प्रसन्नता का अनुभव करता है। यही है समग्र शान्ति का मार्ग, जिस पर चलकर अपने जीवन को सुखमय बनाया जा सकता है और विपरीत परिस्थितियों में धैर्य रखते हुए द्वन्द्वों से बचा जा सकता है।